मंदिर से जुड़ी कथा

धोपेश्वर नाथ मंदिर से जुड़ी एक अत्यंत भावनात्मक कथा केदार नाथ टंडन की भी है, जो आज भी भक्तों में श्रद्धा से सुनाई जाती है। वे एक साधारण मुनीम थे, जो प्रतिदिन मंदिर आकर भगवान शिव के समक्ष अपनी जीवन की कठिनाइयां रखते थे। एक दिन एक संत ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि उनकी भक्ति शीघ्र ही उन्हें सामान्य जीवन से उठाकर समृद्धि के उच्च स्तर पर ले जाएगी। कुछ समय बाद उन्हें असम जाकर व्यापार प्रारंभ करने का अवसर मिला। वहां वे अत्यंत सफल हुए, किंतु समृद्धि के बीच भी उनका मन धोपेश्वर नाथ से जुड़ा रहा। वे प्रत्येक श्रावण मास में बरेली आकर दर्शन करते, दान देते, भंडारा कराते और अंततः असम में भी धोपेश्वर नाथ नाम से शिवलिंग स्थापित कर मंदिर बनवाया। यह कथा आज भी इस मंदिर को "जीवन बदलने वाली कृपा" के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

धोपेश्वर नाथ मंदिर

ऐतिहासिक आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक संगम

बरेली की आध्यात्मिक पहचान जिन कुछ प्राचीन तीर्थस्थलों से निर्मित होती है, उनमें धोपेश्वर नाथ मंदिर का स्थान अत्यंत विशिष्ट, प्राचीन और श्रद्धा से परिपूर्ण है। यह केवल एक शिव मंदिर नहीं, बल्कि समय, साधना, लोकआस्था, इतिहास और सांस्कृतिक निरंतरता का जीवंत केंद्र है। इस मंदिर के प्रांगण में प्रवेश करते ही एक ऐसा अनुभव होता है मानो अनेक शताब्दियों की आराधना आज भी वातावरण में स्पंदित हो रही हों। मंदिर की घंटियों की ध्वनि, शिवलिंग पर निरंतर चढ़ता जल, धूप की सुगंध, प्राचीन वृक्षों की छाया और भक्तों की मौन प्रार्थनाएं इस स्थल को एक अद्वितीय दिव्यता प्रदान करती हैं। धोपेश्वर नाथ केवल पूजा का स्थान नहीं, बल्कि बरेली की आत्मा में बसने वाला वह आध्यात्मिक केंद्र है, जहां पीढ़ियां अपनी आशा, आस्था और भावनाएं समर्पित करती रही हैं।

डॉ .तनु जैन
सीईओ, बरेली छावनी

पांचाल भूभाग का हिस्सा

स्थानीय परंपराओं और जनश्रुतियों के अनुसार इस मंदिर की पौराणिक जड़ें प्राचीन पांचाल राज्य से जुड़ी मानी जाती हैं। यह संपूर्ण क्षेत्र महाभारत कालीन पांचाल भूभाग का हिस्सा माना जाता है, जहां राजा द्रुपद का राज्य था और जहां से उनकी पुत्री द्रौपदी का गौरवशाली इतिहास जुड़ता है। लोकमान्यता है कि अपने जीवन के संघर्षपूर्ण समय में द्रौपदी ने इस क्षेत्र में स्थित शिवस्थलों पर भगवान शिव की उपासना की थी और धोपेश्वर नाथ में जल, पुष्प और श्रद्धा अर्पित कर अपने जीवन के लिए शक्ति, संरक्षण और न्याय की प्रार्थना की थी। यह कथा केवल धार्मिक भावना नहीं, बल्कि स्त्री-शक्ति, धैर्य और आंतरिक सामर्थ्य का प्रतीक भी बन चुकी है। आज भी अनेक महिलाएं यहां आकर यह अनुभव करती हैं कि द्रौपदी की भांति यहां की प्रार्थना जीवन को संबल देती है। धोपेश्वर नाथ इस दृष्टि से वह स्थल बन जाता है, जहां शिव केवल देवता नहीं, बल्कि पीड़ा को सुनने वाले करुणामय साक्षी बन जाते हैं।

नाथ परंपरा

मंदिर की प्राचीनता को स्थानीय स्तर पर प्राप्त कुछ पुरातात्विक संकेत भी पुष्ट करते हैं। मंदिर परिसर और उसके आसपास समय-समय पर प्राचीन शिलाखंड, पुरानी मूर्तियों के अवशेष तथा पत्थर पर उत्कीर्ण आकृतियां प्राप्त होने की बातें स्थानीय लोगों द्वारा कही जाती रही हैं। इन अवशेषों की शैली यह संकेत देती है कि यह क्षेत्र संभवतः किसी प्राचीन मंदिर समूह अथवा आध्यात्मिक संरचना का भाग रहा होगा। यद्यपि इस क्षेत्र में व्यापक वैज्ञानिक उत्खनन सीमित है तथापि स्थानीय स्मृतियों में सुरक्षित ये पुरातात्विक चिह्न यह बताते हैं कि धोपेश्वर नाथ की आराधना केवल कुछ पीढ़ियों पुरानी नहीं, बल्कि अनेक कालखंडों को पार करती हुई वर्तमान तक पहुंची है। धोपेश्वर नाथ का महत्व केवल पौराणिक नहीं, बल्कि नाथ परंपरा के कारण भी अत्यंत विशिष्ट है। बरेली क्षेत्र लंबे समय से साधना, योग और तपस्या की भूमि माना जाता रहा है। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार यहां धूम्र ऋषि जैसे महात्माओं ने तप किया और बाद में उनके शिष्यों ने इस क्षेत्र को साधना-केंद्र के रूप में विकसित किया। जहां आज आर . एन . टैगोर इंटर कॉलेज स्थित है, उस क्षेत्र को भी कभी ऋषियों की तपोभूमि माना जाता है। कहा जाता है कि यहां आश्रम थे, जहां दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा और अनुशासन ग्रहण करने आते थे। साधना और शिक्षा का यह अद्भुत संगम इस क्षेत्र को केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाता है।

बाबा हरदेव तालाब

स्थानीय परंपरा में बाबा हरिहर देव का उल्लेख विशेष श्रद्धा से किया जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने अपने गुरु की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए यहां एक विशाल आध्यात्मिक वातावरण निर्मित किया। विद्यार्थियों के लिए तालाब बनवाया गया, जिसके चारों ओर 108 पीपल के वृक्ष लगाए गए। यह तालाब आज भी बाबा हरदेव तालाब के रूप में स्मृतियों में जीवित है। इसके आसपास आम, अमरूद, कटहल, जामुन, अंजीर, केला आदि के वृक्ष लगाए गए, जिससे यह क्षेत्र प्रकृति और आध्यात्मिकता का सुंदर संगम बन गया। यह बताता है कि यहां केवल पूजा नहीं होती थी, बल्कि जीवन को संतुलित, अनुशासित और आत्मनिर्भर बनाने की व्यवस्था भी थी।

नाथ नगरी कॉरिडोर

वर्तमान समय में धोपेश्वर नाथ मंदिर बरेली के सबसे सक्रिय आध्यात्मिक केंद्रों में से एक है। महाशिवरात्रि और श्रावण मास में यहां विशाल जनसमूह उमड़ता है। भक्त दूर-दूर से गंगाजल लेकर आते हैं। मंदिर परिसर में "हर हर महादेव" की गूंज, शिव स्तुति, रुद्राभिषेक और भक्ति का प्रवाह वातावरण को अत्यंत दिव्य बना देता है। अनेक परिवार पीढ़ियों से यहां आकर अपने बच्चों को भी इस परंपरा से जोड़ते हैं। हाल के वर्षों में मंदिर का महत्व और अधिक बढ़ा है, क्योंकि योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में अनेक प्राचीन धार्मिक स्थलों को समग्र विकास से जोड़ने का प्रयास हुआ है। इसी क्रम में बरेली के लिए नाथ नगरी कॉरिडोर की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण बनकर उभरी है। इस कॉरिडोर का उद्देश्य केवल मंदिर तक पहुंच बनाना नहीं, बल्कि नाथ परंपरा से जुड़े प्रमुख स्थलों, मंदिरों, प्राचीन तालाबों, मार्गों और सांस्कृतिक बिंदुओं को एक समग्र आध्यात्मिक धारा में जोड़ना है। नाथ नगरी कॉरिडोर के अंतर्गत धोपेश्वर नाथ मंदिर का विशेष स्थान माना जा रहा है, क्योंकि यह बरेली की प्राचीन शिव परंपरा का केंद्रीय स्थल है। यदि यह परियोजना पूर्ण रूप से विकसित होती है, तो मंदिर क्षेत्र में सौंदर्यीकरण, पारंपरिक शैली की प्रकाश व्यवस्था, तीर्थयात्री सुविधाएं, विरासत-उन्मुख मार्ग, सांस्कृतिक सूचना पट्ट और पर्यावरणीय संरक्षण जैसे अनेक कार्य संभव होंगे। इससे बरेली की आध्यात्मिक पहचान राष्ट्रीय स्तर पर और सशक्त होगी।

जीवित विश्वास का मंदिर

वर्तमान समय में स्थानीय प्रशासनिक दृष्टि से भी इस क्षेत्र के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है। डॉ . तनु जैन, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, बरेली छावनी, द्वारा आसपास के सांस्कृतिक और विरासत-संबद्ध स्थलों को गरिमा और स्वच्छता के साथ विकसित करने की दृष्टि इस व्यापक विरासत चेतना से जुड़ती है। यह समझ अत्यंत महत्वपूर्ण है कि किसी मंदिर की पवित्रता केवल उसके गर्भगृह तक सीमित नहीं होती, उसके आसपास का वातावरण, स्वच्छता, हरियाली और सार्वजनिक गरिमा भी उसकी आध्यात्मिक अनुभूति को गहरा करती है। धोपेश्वर नाथ मंदिर आज केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की जीवंत आस्था और भविष्य की सांस्कृतिक दिशा है। यहां द्रौपदी की मौन प्रार्थना की कल्पना है, ऋषियों की तपस्या है, नाथ संतों की साधना है, साधारण भक्तों की बदली हुई नियति है, प्राचीन मूर्तियों की मौन गवाही है और आधुनिक समय की नई आध्यात्मिक पुनर्स्थापना की संभावना है। जब कोई भक्त शिवलिंग के सामने खड़ा होकर जल अर्पित करता है, तब वह केवल पूजा नहीं करता- वह स्वयं को शताब्दियों पुरानी उस आस्था से जोड़ देता है, जो पीढ़ियों से यहां प्रवाहित हो रही है। यही धोपेश्वर नाथ की सबसे बड़ी शक्ति है। यह मंदिर केवल पत्थरों का नहीं, बल्कि जीवित विश्वास का मंदिर है।

पौराणिक कथा

श्रीकृष्ण के प्रेम में दीवानी मीराबाई

भारत का राजस्थान प्रांत वीरों की खान कहा जाता है, पर इस भूमि को श्रीकृष्ण के प्रेम में अपना तन-मन और राजमहलों के सुखों को ठोकर मारने वाली मीराबाई ने भी अपनी चरण रज से पवित्र किया है। हिन्दी साहित्य में रसपूर्ण भजनों को जन्म देने का श्रेय मीरा को ही है। साधुओं की संगत और एकतारा बजाते हुए भजन गाना ही उनकी साधना थी। मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई .. गाकर मीरा ने स्वयं को अमर कर लिया। मीरा का जन्म मेड़ता के राव रत्नसिंह के घर 23 मार्च, 1498 को हुआ था। जब मीरा तीन साल की थी, तब उनके पिता का और दस साल की होने पर माता का देहांत हो गया। जब मीरा बहुत छोटी थी, तो एक विवाह के अवसर पर उसने अपनी मां से पूछा कि मेरा पति कौन है? माता ने हंसी में श्रीकृष्ण की प्रतिमा की ओर इशारा कर कहा कि यही तेरे पति हैं। भोली मीरा ने इसे ही सच मानकर श्रीकृष्ण को अपने मन-मंदिर में बैठा लिया।

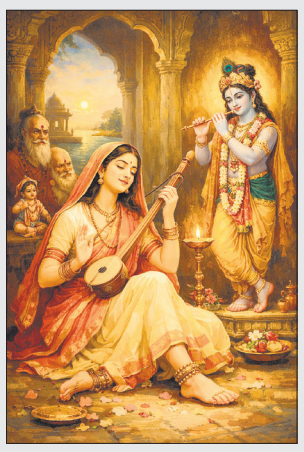

सुरेश बाबू मिश्रा
साहित्य भूषण, बरेली

माता और पिता की छत्रछाया सिर पर से उठ जाने के बाद मीरा अपने दादा राव दूदाजी के पास रहने लगीं। उनकी आयु की बालिकाएं जब खेलती थीं, तब मीरा श्रीकृष्ण की प्रतिमा के सम्मुख बैठी उनसे बात करती रहती थी। कुछ समय बाद उसके दादा जी भी स्वर्गवासी हो गए। अब राव वीरमदेव गद्दी पर बैठे। उन्होंने मीरा का विवाह चित्तौड़ के प्रतापी राजा राणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज से कर दिया। इस प्रकार मीरा ससुराल आ गई, पर अपने साथ वह अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की प्रतिमा लाना नहीं भूली। मीरा की श्रीकृष्ण भक्ति और वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था। राजा भोज भी प्रसन्न थे, पर दुर्भाग्यवश विवाह के दस साल बाद राजा भोजराज का देहांत हो गया। अब तो मीरा पूरी तरह श्रीकृष्ण को समर्पित हो गईं। उनकी भक्ति की चर्चा सर्वत्र फैल गई। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन को आने लगे। पैरों में घुंघरू बांध कर नाचते हुए मीरा प्रायः अपनी सुधबुध खो देती थीं। मीरा की सास, ननद और राणा विक्रमाजीत को यह पसंद नहीं था। राज-परिवार की पुत्रवधू इस प्रकार बेसुध होकर आम लोगों के बीच नाचे और गाए, यह उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। उन्होंने मीरा को समझाने का प्रयास किया, पर वह तो सांसारिक मान-सम्मान से ऊपर उठ चुकी थीं। उनकी गतिविधियों में कोई अंतर नहीं आया। अंततः राणा ने उनके लिए विष का प्याला श्रीकृष्ण का प्रसाद कहकर भेजा। मीरा ने उसे पी लिया, पर सब हैरान रह गए, जब उसका मीरा पर कुछ असर नहीं हुआ। राणा का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने एक काला नाग पिटारी में रखकर मीरा के पास भेजा, पर वह नाग भी फूलों की माला बन गया। अब मीरा समझ गई कि उन्हें मेवाड़ छोड़ देना चाहिए। अतः वह पहले मथुरा-वृंदावन और फिर द्वारका आ गईं। इसके बाद चित्तौड़ पर अनेक विपत्तियां आईं। राणा के हाथ से राजपाट निकल गया और युद्ध में उनकी मृत्यु हो गई।

यह देखकर मेवाड़ के लोग उन्हें वापस लाने के लिए द्वारका गए। मीरा आना तो नहीं चाहती थी, पर जनता का आग्रह वे टाल नहीं सकीं। वे विदा लेने के लिए रणछोड़ मंदिर में गईं, पर पूजा में वे इतनी तल्लीन हो गईं कि वहीं उनका शरीर छूट गया। इस प्रकार 1573 ई . में द्वारका में ही श्रीकृष्ण की दीवानी मीरा ने अपनी देहलीला समाप्त की।

मां नंदादेवी भक्तों को सपने में देती हैं दर्शन

अल्मोड़ा में स्थित मां नंदा देवी का पावन मंदिर हजारों श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र है। यहां स्थापित मां नंदा देवी को शैलपुत्री का रूप माना जाता है। अल्मोड़ा की नंदा देवी चंद वंश राजाओं की कुलदेवी हैं, जो आज भी अपने भक्तों को सपने में दर्शन देती हैं और उनकी मनोकामना पूरी करती हैं। पुजारी तारा दत्त जोशी बताते हैं कि यह मंदिर प्राचीन काल का है और माता की मूर्ति की स्थापना इस प्रांगण में करीब 200 साल पहले की गई थी। इससे पहले नंदा देवी को मल्ला महल में पूजा जाता था। उसके बाद इस प्रांगण में माता की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा की गई। तब से लेकर आज तक यहां माता की पूजा-अर्चना की जाती है। उन्होंने बताया कि इस मंदिर में हर महीने हजारों की संख्या में श्रद्धालु पहुंचते हैं। श्रद्धालुओं के द्वारा यह भी कहा जाता है कि माता ने उन्हें सपने में आकर दर्शन दिए, जिसके बाद वह इस मंदिर तक पहुंचे हैं। उन्होंने बताया कि चंद वंशज राज परिवार मां नंदादेवी को अपनी कुल देवी के रूप में पूजन करते है। *-रमेश जड़ौत, अल्मोड़ा*

200 अशर्फियों को गलाकर हुई मंदिर की स्थापना

नंदादेवी मंदिर समिति संयोजक अर्जुन बिष्ट ने बताया कि 1670 में बाज बहादुर चंद बधानगढ़ से नंदादेवी की स्वर्ण प्रतिमा अल्मोड़ा लाए थे। 1699 में राजा ज्ञानचंद भी बधानकोट से एक स्वर्ण प्रतिमा अल्मोड़ा लाए। 1710 में राजा जगत चंद को बधानकोट विजय के अवसर पर नंदादेवी की प्रतिमा प्राप्त नहीं हुई, जिसके बाद उन्होंने अपने खजाने से 200 अशर्फियों को गलाकर नंदादेवी की प्रतिमा का निर्माण कराया और इन्हें मल्ला महल स्थित नंदादेवी मंदिर में प्रतिष्ठित कराया। जिस परिसर में वर्तमान नंदादेवी मंदिर स्थित है, वहां पर 1690-91 में तत्कालीन नरेश उद्योत चंद ने दो शिव मंदिर उद्योत चंद्रेश्वर और पार्वती चंद्रेश्वर बनाए। अंग्रेजी शासनकाल में 1815 में तत्कालीन कमिश्नर ट्रेल ने उन्हें उद्योत चंद्रेश्वर मंदिर में रखवा दिया। इसके बाद कमिश्नर ट्रेल उनकी आंखों की रोशनी अचानक काफी कम हो गई। कुछ लोगों की सलाह पर उन्होंने अल्मोड़ा आकर 1816 में नंदादेवी का मंदिर बनवाकर (वर्तमान मंदिर) वहां नंदादेवी की मूर्ति स्थापित कराई। उसके बाद उनके आंखों की रोशनी लौट आई।

मंदिरों में खजुराहो कलाकृति

नंदादेवी मंदिर अल्मोड़ा की मंदिर की निर्माण शैली भी काफी पुरानी है। यहां उद्योत चंद्रेश्वर मंदिर की स्थापना 17 वीं शताब्दी के अंत में मानी जाती है। उद्योत चंद्रेश्वर मंदिर के ऊपरी हिस्से में एक लकड़ी का छज्जा है। मंदिर में बनी कलाकृति खजुराहो मंदिरों की तर्ज पर है। ये मंदिर संरक्षित श्रेणी में शामिल हैं।

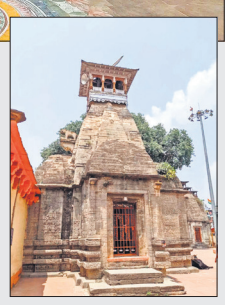

चंद वंशज करते हैं तांत्रिक पूजा

अल्मोड़ा में मां नंदा की पूजा-अर्चना तारा शक्ति के रूप में तांत्रिक विधि से करने की परंपरा है। पहले से ही विशेष तांत्रिक पूजा चंद शासक व उनके परिवार के सदस्य करते आए हैं। वर्तमान में चंद वंशज नैनीताल के पूर्व सांसद स्व . केसी सिंह बाबा का परिवार राजा के रूप में पूजा में बैठते हैं।

बोधकथा

लालच का अंत

एक समय की बात है, एक छोटे से गांव में रामू नाम का किसान रहता था। वह बहुत मेहनती था, लेकिन उसकी एक बुरी आदत थी-उसे हमेशा और अधिक पाने की लालसा रहती थी, जो उसके पास था, उससे वह कभी संतुष्ट नहीं होता था। एक दिन खेत में काम करते हुए उसे जमीन के अंदर एक चमकती हुई सोने की मूर्ति मिली।

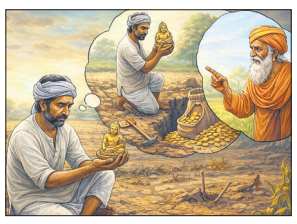

रामू की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने सोचा, "अब तो मेरी किस्मत बदल गई।" वह मूर्ति को घर ले आया और उसे बेचकर बहुत सारा धन कमा लिया। अब उसके पास अच्छे कपड़े, बड़ा घर और ढेर सारी सुविधाएं थीं, लेकिन कुछ ही दिनों में उसका मन फिर असंतुष्ट हो गया। उसने सोचा, "अगर मुझे एक मूर्ति मिल सकती है, तो और भी मिल सकती हैं।" लालच में आकर वह रोज अपने खेत की खुदाई करने लगा। वह खेती पर ध्यान देना भूल गया।

दिन बीतते गए, खेत बर्बाद हो गया, फसल नष्ट हो गई और घर का खर्च भी बढ़ता गया, जो पैसा उसने मूर्ति से कमाया था, वह धीरे-धीरे खत्म होने लगा। अब रामू के पास न खेत बचा, न पैसा। एक दिन वह थककर बैठ गया और सोचने लगा, "मैंने क्या खो दिया?" तभी उसके गांव का एक बुजुर्ग उसके पास आया और बोला, "रामू, प्रकृति ने तुम्हें मेहनत से कमाने का रास्ता दिया था, लेकिन तुमने लालच में आकर उसे छोड़ दिया।" रामू को अपनी गलती समझ में आ गई। उसने फिर से अपने खेत को संवारना शुरू किया, मेहनत की और धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी। अब उसने तय कर लिया कि वह जो मिलेगा, उसमें संतोष रखेगा और मेहनत से ही आगे बढ़ेगा। कथा से सीख मिलती है कि लालच इंसान को उसके मूल रास्ते से भटका देता है। सच्ची सफलता मेहनत और संतोष में ही छिपी होती है।

मर्यादा, करुणा और आदर्श के शाश्वत प्रतीक श्रीराम

गोस्वामी जी ने लिखा है- विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। उल्लेख मिलता है कि इक्ष्वाकु वंशीय, अयोध्या के चक्रवर्ती राजा दशरथ ने चौथेपन में पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसके फलस्वरूप श्रीहरि के सातवें अवतार के रूप में श्रीरामचंद्र उनको पुत्र-रूप में प्राप्त हुए। एक मां के ममत्व की दृष्टि से रानी कौशल्या ने प्रगट हुए श्रीहरि के विशायकाय रूप को देखकर अनुरोध किया कि आप मेरे गर्भ से जन्म लेकर शिशु-लीला कीजिए। मेरे वात्सल्य-स्नेह की पूर्णता तो आपके बालरूप में ही प्राप्त होगी। इस संदर्भ में कौशल्या सहित अन्य समस्त नारी समाज के लिए भी यह अवसर उसके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और सार्थकता प्रदान करने वाला होता है, जब वह मां बनती हैं। तदनंतर श्रीहरि कौशल्या के गोद में नवजात शिशु की भांति चैत्र मास के शुक्ल पक्ष, तिथि नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र और कर्क लग्न की शुभ मुहूर्तबेला में जन्म लेते हैं। यही दिन चैत्र नवरात्रि के पवित्र दिवस (नवमी) शक्ति उपासना-आराधना के विराम का भी होता है।

रामकथा में वनवास- प्रसंग को मूलतः संसारी जीवों के अनेक उतार-चढ़ाव, उथल-पुथल और झंझावातों के बीच से संतुलन बनाकर निकलने के सांकेतिक निष्कर्ष के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए, जिसे प्रभु राम भरपूर, सानंद जीते हैं तथा 14 वर्ष के दीर्घ अंतराल तक तापस-वेष में जंगल-जंगल घूमने वाले श्रीराम स्वयं में इस यथार्थ के प्रतीक हैं कि अपने-अपने हिस्से का वनवास तो सबको स्वयं ही काटना पड़ेगा। अपने हालात पर किसी को दोष न देना और सत्साहस से उसका मुकाबला करते हुए परिस्थितियों को अपने पक्ष में कर लेने का सबक उन्हीं से सीखना चाहिए। कंटकाकीर्ण पथ पर आम और खास सब एक समान हैं। अपने कर्म व प्रारब्ध की गति पर पर सभी को तैयार रहना चाहिए, चाहे वह कोई भी हो।

रामजी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण व ग्रहणीय पक्ष यही है कि आप जीवन को दीन-दुखियों, जरूरतमंदों और हाशिये पर जी रहे लाखों लोगों के लिए प्रेरक कैसे बन सकते हैं। उनको मुख्यधारा में लाकर सम्मानित जीवन का उजाला कैसे प्रदान कर सकते हैं। श्रीराम ने चौदह वर्ष के जंगल-प्रवास को इसी संकल्प के साथ जिया। चाहे वह केवटराज को अपने स्नेह से अत्यंत प्रिय बना लेना हो, चाहे जनम-जनम से हरिदर्शन की भूखी एकनिष्ठ स्नेही-शबरी की कुटिया में जाकर उनके जूठे बैर खाना हो या वानर जाति, जो एक से दूसरी शाखा पर उछलकूद करके जीवन गुजार देते हैं, उनसे मैत्री कर भार्या सीता की खोज व प्राप्ति का पूरा श्रेय उन्हें देने का हो। श्रीराम की यह भिन्न-भिन्न गुण, धर्म, जाति व संस्कृति के साथ सर्वग्राहकता अद्भुत और अनूठी है। राजा न होते हुए भी उन्होंने सबको एक मंच पर अन्याय के विरुद्ध एकत्र कर लिया। लंकाधिपति को अयोध्या या अन्य राजाओं की सैन्य मदद से भी परास्त किया जा सकता था, परंतु राम जी ने ऐसा नहीं किया। कारण स्पष्ट है उन्होंने बिखरी हुई जनशक्ति को सही दिशा दी। महाबली के घमंड को माटी में मिलाना गुणनिधान के उसी चिंतन का प्रतिफल है। राम रथविहीन हैं, वानरों की सेना के सहारे, तापस वेषधारी हैं, सैन्य साजोसामान से वंचित हैं, किंतु स्त्री-अस्मिता की लड़ाई के लिए जो साहस और इरादे की जरूरत होती है, उनमें भरी हुई है। संपूर्ण रामकथा को पढ़ाते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वे अंतिम समय तक युद्ध को टालते के विकल्पों पर विचार विमर्श करते रहे। आज पूरी दुनिया युद्ध के मुहाने पर खड़ी है, चंद सिरफिरों के अहंकार और वर्चस्व की आग में खाड़ी के कई देश जल रहे हैं। ऐसे में राम का चरित्र, राम का आचरण और उनकी महानता से अहंकारी और लालची देशों को सबक लेना चाहिए कि उन्होंने जो अपनी ताकत इकट्ठा कर रखी है, वह दूसरे को भयभीत करने में नहीं, परस्पर सहयोग वह सामंजस्य में ही उसका सदुपयोग करें। हमारे आराध्य प्रभु श्रीराम राजाओं-महाराजाओं के ऐश्वर्यवादी जीवन से दूर केवल एक पत्नीव्रती हैं। पत्नी को सुरक्षित कैद से मुक्ति दिलाने हेतु रावण के एक लाख पूत सवा लाख नाती, ता रावन घर दिया न बाती की कहावत को उन्होंने चरितार्थ किया। सत्य की इसी स्थापना की पूर्ति के लिए ही तो उनका अवतार हुआ था। वे तभी तो जन-जन के प्रिय और आदर्श बन गए। जानकी के कंठाभूषण और प्रजापालक ऐसे कि प्रजा के सवाल खड़ा करने पर बिना देर किए उसी प्राणबल्लभा जानकी को त्यागने मे तत्पर हो गए। यह किसी और राजा-महाराजा के वश की बात नहीं, प्रजा को प्राणों की तरह मानने वाले प्रभु राम प्राण-प्यारी माता सीता को भी निर्वासन देने में नहीं हिचके। वस्तुतः आज के समय में जो अपनी प्रजा (जनमानस) की आर्त-पुकार अनसुना कर दे, उसे श्रीराम को हृदयंगम करना चाहिए।

संतोष कुमार तिवारी
नैनीताल